वर्तमान साधु और नवीन मानस

यूरोपमें गैलिलियो वगैरह वैज्ञानिकोंने जब विचारका नया द्वार खोला और ब्रूनो जैसे पादरी पुत्रोंने धर्म-चिन्तनमें स्वतन्त्रता दिखलाई, तब उनका विरोध करनेवाले वहाँके पोप और धर्मगुरु थे। बाइबिलकी पुरानी बातें जब विचारोंकी नवीनता और स्वतन्त्रता न सह सकीं तब जड़ता और विचारोंके बीचमें द्वन्द्व शुरू हुआ। अन्तमें जड़ताने अपना अस्तित्व सलामत रखनेके लिए एक ही मार्गका अवलम्बन किया। अर्थात् जब धर्मगुरुओं और पोपोंने अपने धर्मकी मर्यादा केवल बाइबिलके गिरि-प्रवचनमें और यथा-शक्य सेवा-क्षेत्रमें सीमित देखी और विज्ञान और शिक्षाके नवीन बलको मार्गदर्शन करानेमें अपनेको असमर्थ पाया, तब उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित करके नये जमानेकी बढ़ती हुई विचार-धाराका मार्ग रोकनेकी आत्म-घातक प्रवृत्तिसे हटकर अपने और नवीन विकासके अस्तित्वको बचा लिया।

यूरोपमें जो बात युगों पहले शुरू हुई थी और अन्तमें अपने स्वाभाविक मार्गको पहुँच गई थी, भारतमें भी आज हम उसका आरम्भ देख रहे हैं, खास करके जैन समाजमें। यहाँके और समाजोंको अलग रखकर केवल वैदिक या ब्राह्मण समाजको लेकर जरा विचार कीजिए। वैदिक समाज करोड़ोंकी संख्यामें है। उसमें गुरु-पदोंपर गृहस्थ ब्राह्मणोंके अलावा त्यागी संन्यासी भी हैं—और वे लाखों हैं। जब नवीन शिक्षाका आरंभ हुआ, तब उनमें भी हलचल मच गई। पर उस हलचलसे भी ज्यादा तेजीसे नवीन शिक्षा फैलने लगी। उसने अपना मार्ग नये ढँगपर शुरू किया। जो ब्राह्मण-पंडित शास्त्रके बल और परम्पराके प्रभावसे चारों वर्णोंके लिए गुरुतुल्य मान्य थे, जिनकी वाणी न्यायका काम करती थी और वर्ण और आश्रमोंकी पुरानी रूढ़ियोंके बाहर पैर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखनेमें पापका भय दिखलाती और प्रायश्चित्त देती थी, उन्हीं धुरन्धर पंडितोंकी सन्तानोंने नवीन शिक्षा लेकर अपने बड़ोंका सामना किया और जहाँ कोई मार्ग न मिला वहाँ ब्रह्मसमाज, देवसमाज, आर्यसमाजादि नये धर्मोंकी स्थापना कर ली। एक तरफ शिक्षित गृहस्थोंमेंसे प्रजाके नवीन मानसको मार्ग दिखा सकनेवाला समर्थ वर्ग तैयार होने लगा और दूसरी तरफ साधु-संन्यासियोंमेंसे भी ऐसा वर्ग निकलने लगा जो पाश्चात्य शिक्षाको समझता था और उसको अपना लेनेमें ही प्रजाका सुन्दर भविष्य देखता था। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थने नवीन-शिक्षाप्राप्त हिन्दुओंके मानसको पहचान लिया और उसे योग्य दिशामें सहानुभूतिपूर्वक ले जानेका प्रामाणिक और बुद्धि-सिद्ध प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि आज पुरानी रूढ़ियोंके कट्टरसे कट्टर समर्थक लाखों सनातनी पंडितोंके रहते हुए भी विशाल वैदिक समाजकी इस नवीन पीढ़ीके लिए शिक्षणमें या विचार-स्वातन्त्र्यमें कोई बंधन नहीं रह गया। यही कारण है कि जहाँ एक ओर दस हजार वर्ष पुराने वैदिक कालके पक्षपाती प्रखर पंडित मौजूद हैं वहीं विद्याकी प्रत्येक शाखामें सर्वथा नवीन ढंगसे पारंगत और खुल्लमखुल्ला पुराने समयके बंधनोंके विरोधी हजारों लाखों विद्वान् नजर आने लगे हैं। कोई भी सनातनी पंडित या शंकराचार्य, जगदीशचन्द्र बोस या सी० वी० रमणको इसीलिए नीचे गिरानेका प्रयत्न नहीं करता कि उन्होंने जो उनके पूर्वजोंने नहीं किया था वह किया है। कालिदास और माघके वंशज किसी संस्कृत-कविने टागोरके कवित्वके विरोधमें इसलिए रोष नहीं दिखाया कि उन्होंने वाल्मीकि और व्यासके सनातन मार्गसे भिन्न बिल्कुल नई दिशामें प्रस्थान किया है। गीताके भाष्यकार आचार्योंके पट्टधरोंने गाँधीजीको इसीलिए त्याज्य नहीं गिना कि उन्होंने पूर्वाचार्योंद्वारा फलित न की हुई अहिंसा गीतामेंसे फलित की है। अर्थात् हिन्दू समाजमें करोड़ों अति संकुचित, शंकाशील और डरपोकोंके होते हुए भी सारी दुनियाका ध्यान आकर्षित करनेवाले असाधारण लोग जन्मते आये हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि इस समाजमें नये मानसको पहचाननेवालों, उसका नेतृत्व करनेवालों और उसके साथ तन्मय होनेवालोंका कभी अभाव नहीं रहा।

अब जरा जैन समाजकी ओर देखिए। उसमें कोई पचास वर्षसे नवीन शिक्षाका संचार धीरे धीरे हुआ है। वह जैसे जैसे बढ़ता गया, वैसे वैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्याघाती बल भी सामने आने लगा और जैन समाजके नये मानसके साथ पुराने मानसका संघर्ष होने लगा। परन्तु जिसे हम जैन समाजका पुराना मानस कहते हैं सचमुचमें तो उसे साधुओंका मानस समझना चाहिए। यह सच है कि कट्टर और दुराग्रही स्त्री-पुरुष जैन गृहस्थोंमें भी थे और अब भी हैं। परन्तु उनके संचालनकी बागडोर सदा साधुओंके हाथमें रही है। इसका यह अर्थ नहीं कि तमाम गृहस्थोंने किसी एक समयमें अपना नेतृत्व साधुवर्गको सौंप दिया है किन्तु पुरानी परम्पराके अनुसार एक ऐसी मान्यता चली आई है कि शिक्षा और त्यागमें तो साधु ही आगे हो सकते हैं। गृहस्थ यदि पढ़ते हैं, तो केवल अपना व्यापार चलानेके लिए। सब विषयोंका और सभी प्रकारका ज्ञान तो साधुओंमें ही हो सकता है। और त्याग तो साधुओंका जीवन ही रहा। इस परम्परागत श्रद्धाके कारण जाने या अनजाने गृहस्थ-धर्म साधुओंके कथनानुसार ही चलता आया है। व्यापार-धन्धेके अलावा विचारणीय प्रदेशमें सदासे केवल साधु ही सच्ची सलाह देते आये हैं—इसीलिए जब भी कोई नई परिस्थिति खड़ी होती है, और पुरानी लकीरके फकीर क्षुब्ध होते या घबड़ाते हैं, तब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे साधुओंका मानस ही उस क्षोभका प्रेरक नहीं तो पोषक अवश्य होता है। यदि ऐसे क्षोभके समय कोई समर्थ विचारक साधु लकीरके फकीर श्रावकोंको योग्य सलाह दे, तो निश्चय ही वह क्षोभ तुरन्त मिट जाय। अज्ञता, संकीर्णता, प्रतिष्ठा-भय या अन्य कारणोंसे साधु लोग नवीन शिक्षा, नवीन परिस्थिति और उसके बलका अन्दाज नहीं लगा सकते। परिणामस्वरूप वे नवीन परिस्थितिका विरोध न भी करें, तो भी जब उदासीन रहते हैं तब लकीरपंथी श्रद्धालु जन मान लेते हैं कि जब महाराज साहब ऐसी बातोंमें चुप हैं तब यह नवीन प्रकाश या नवीन परिस्थिति समाजके लिए इष्ट नहीं होगी और इसलिए वे लोग बिना कुछ सोचे समझे खुद अपनी ही संतानोंका सामना करने लगते हैं। और यदि कहीं कोई प्रभावशाली साधु हाथ डाल देते हैं, तब तो जलतेमें घी पड़ जाता है।

साधुसमाजकी जड़ता

पर यह बात खास तौरसे श्वेताम्बर मूर्तिपूजकोंमें ही दिखाई देती है। दिगम्बर समाजमें तो उनके सद्भाग्यसे साधु लोग रहे ही नहीं थे। अवश्य ही अभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभी कुछ नग्न साधु नये हुए हैं जो पुरानी चालके हैं। अत्यन्त संकुचित मनके पण्डित, ब्रह्मचारी और वर्णी भी हैं। ये सब दिगम्बर समाजकी नई प्रजाकी नवीन शिक्षा, नये विचार और विचार-स्वातन्त्र्यमें बहुत बाधा डालते हैं। एक तरहसे ये अपने समाजमें मन्दगतिसे भी प्रवेश करते हुए प्रकाशको दबानेके लिए यथाशक्य सब कुछ करते हैं। इसी कारण उक्त समाजमें भी जड़ता और विचारशीलताके बीच महाभारत चालू है। फिर भी श्वेतांबर मूर्तिपूजकोंमें साधुओंका जितना प्रभाव है, जितना अनधिकार हस्तक्षेप है और जितना गृहस्थ और साधुओंके बीच तादात्म्य है, उतना दिगम्बर समाजके पंडितों और साधुओंमें नहीं है। इस कारण श्वेताम्बर समाजका क्षोभ दिगम्बर समाजके क्षोभकी अपेक्षा अधिक ध्यान खींचता है। स्थानकवासी समाजमें इस तरहके क्षोभके प्रसंग नहीं उपस्थित होते। कारण उस समाजमें श्रावकोंपर साधुओंका प्रभाव व्यवहार-क्षेत्रमें नाम मात्रको भी नहीं। गृहस्थजन साधुओंको मान देते, वन्दना करते और पोषते हैं, बस इतना ही। किन्तु साधुजन यदि गृहस्थोंकी प्रवृत्तिमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हाथ डालते हुए जान पड़ें, तो उन्हें साधुके नाते जीना ही मुश्किल हो जाय। श्वेतांबर साधुओंने गृहस्थ-जीवनके विकासके लिए जो कुछ किया है, उसका शायद शतांश भी स्थानकवासी साधुओंने नहीं किया। पर यह भी सच है कि उन्होंने श्वेतांबर साधुओंकी भाँति गृहस्थके जीवन-विकासमें बाधायें खड़ी नहीं कीं। यों तो स्थानकवासी समाजमें भी पुराने और नये मानसके बीच संघर्ष है लेकिन उस संघर्षका मूल सूत्र साधुओंके हाथमें नहीं है। इसीलिए वह न तो ज्यादा समय तक चलता है और न उग्ररूप धारण करता है। उसका समाधान आप ही आप बाप-बेटों, और भाई भाईमें ही हो जाता है। किन्तु श्वेताम्बर समाजके साधु इस प्रकारका समाधान अशक्य कर देते हैं।

धार्मिक झगड़े

अब हम जरा पिछली शताब्दियोंकी ओर बढ़ें और देखें कि, वर्तमानमें जैसा संघर्ष साधुओं और नवीन प्रजाके बीच दिखाई देता है वैसा किसी तरहका संघर्ष साधुओं और गृहस्थोंके बीच, खासकर शिक्षा और संस्कारके विषयमें, उत्पन्न हुआ या नहीं? इतिहास कहता है कि नहीं। भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीरके बादके इतिहासमें कलह और संघर्ष होनेके यों तो कई प्रमाण मिलते हैं लेकिन वह संघर्ष जब धार्मिक था तब दोनों ओरके विरोधी सूत्रधार केवल साधु ही थे और वे पूर्ण अहिंसक होनेके कारण प्रत्यक्ष रूपसे हिंसा-युद्ध नहीं कर सकते थे, इस लिए लगाम अपने हाथमें रख कर अपने अपने गच्छकी छावनियोंमें श्रावक सिपाहियोंके द्वारा ही लड़ते थे और इतने कौशलसे लड़ते थे कि लड़नेकी भूख भी मिट जाती थी और अहिंसाका पालन भी होता था। इस प्रकार पुराने इतिहासमें श्रावकों-श्रावकोंके बीचकी धार्मिक लड़ाई भी वास्तवमें तो साधु-साधुओंकी ही लड़ाई थी। लेकिन उसमें एक भी दृष्टान्त ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें आजकलकी भाँति प्रत्यक्ष रीतिसे साधुओं और श्रावकोंके बीच लड़ाई हुई हो।

साधुओंका दृष्टिबिंदु

प्राचीन समयमें शिक्षा साधु और श्रावकोंके बीच आजकी तरह भिन्न नहीं थी। गृहस्थ लोग व्यापार-धन्धेके बारेमें चाहे जितनी कुशलता प्राप्त कर लें पर धार्मिक शिक्षाके सिलसिलेमें वे साधुओंका ही अनुकरण करते थे। साधुओंका दृष्टिबिंदु ही गृहस्थोंका दृष्टिबिन्दु था। साधुओंके शास्त्र ही गृहस्थोंके अन्तिम प्रमाण थे। साधुओंद्वारा प्रदर्शित शिक्षाका विषय ही गृहस्थोंके अभ्यासका विषय और साधुओंकी दी हुई पुस्तकें ही गृहस्थोंकी पाठ्य पुस्तकें और लायब्रेरी थी। तात्पर्य यह कि शिक्षण और संस्कारके प्रत्येक विषयमें गृहस्थोंको साधुओंका ही अनुसरण करना पड़ता था। इसलिए उनका धर्म भारतकी पतिव्रता नारीकी तरह साधुओंके पग-पगपर जाने-आनेका था। पतिका तेज ही पत्नीका तेज, यही पतिव्रताकी व्याख्या है। इसी कारण उसे स्वतन्त्र पुरुषार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। जैन गृहस्थोंकी शिक्षा और संस्कारिताके विषयमें यही स्थिति रही है। सिद्धसेन और समन्तभद्र तार्किक तो थे लेकिन साधुपदको पहुँचनेके बाद। यह सच है कि हरिभद्र और हेमचन्द्रने नव नव साहित्यसे भंडार भर दिये लेकिन वह साधुओंकी शालामें दाखिल होनेके बाद। यशोविजयजीने जैन-साहित्यको नया जीवन दिया लेकिन वह भी साधु अभ्यासीके स्वरूपमें। हम उस पुराने युगमें किसी भी गृहस्थको जैन साधु जितना समर्थ और प्रसिद्ध विद्वान् नहीं देख पाते, इसका कारण क्या है? असाधारण पांडित्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और विद्वत्तावाले शंकराचार्य और दूसरे संन्यासियोंके समयमें उनके ही समक्ष उनसे भी बड़े बड़े गृहस्थ पंडितोंका इतिहास वैदिक समाजमें प्रसिद्ध है। परन्तु प्रसिद्ध साधुओं या आचार्योंकी जोड़का एक भी गृहस्थ श्रावक जैन इतिहासने उत्पन्न नहीं किया। क्या गृहस्थ ब्राह्मणमें जितनी बुद्धि होती है उतनी श्रावकमें नहीं हो सकती? या जब तक श्रावक गृहस्थ है तब तक उसमें इस प्रकारकी बुद्धिकी संभावना ही नहीं और जब वह साधुवेश धारण करता है तभी उसमें एकाएक ऐसी बुद्धि उबल आती है! नहीं, कारण यह है कि गृहस्थ श्रावक शिक्षा और संस्कारके क्षेत्रमें साधुओंके समान दर्जेमें दाखिल ही नहीं हुए। उन्होंने अपना सारा ही समय पातिव्रत्य धर्मका पालन करके भक्तिकी लाज रखनेमें लगाया है और साधुओंकी प्रतिष्ठाका सतत समर्थन किया है। इसीलिए एक ही सामान्य दर्जेमें शिक्षा पानेवाले साधु गच्छ-भेद, क्रियाकाण्ड-भेद या पदवी-मोहके कारण जब आपसमें लड़ते थे तब गृहस्थ श्रावक एक या दूसरे पक्षका वफादारीसे समर्थन करते थे। लेकिन प्रत्यक्ष रीतिसे किसी भी गृहस्थका किसी साधुके सामने लड़ना, मतभेद रखना या विरोध करना होता ही नहीं था। इसी कारण हमारा पुराना इतिहास गृहस्थों और त्यागियोंके शिक्षा–संस्कार विषयक आन्तर-विग्रहसे नहीं रंगा गया। वह कोरा पृष्ठ तो अब यूरोपकी शिक्षासे चित्रित होना शुरू हुआ है।

आन्तरविग्रह

साधुओं और नवीन शिक्षाप्राप्त गृहस्थोंके मानसके बीच इतना बड़ा विग्रहकारी भेद क्यों है? इस अन्तर्विग्रहका मूल कारण क्या है? मानस शिक्षासे और शिक्षाके अनुसार ही बनता है। 'जैसा अन्न तैसा मन' इस कहावतसे ज्यादा व्यापक और सूक्ष्म सिद्धान्त यह है कि 'जैसी शिक्षा वैसा मन।' बीसवीं शताब्दीमें भी शिक्षणसे—केवल पर्याप्त शिक्षणसे ही हजारों वर्ष पहलेके मानसका पुनर्गठन हो सकता है। उस पुराने जंगली मानसको केवल शिक्षणकी सहायतासे थोड़े ही समयमें आधुनिक बनाया जा सकता है। साधु जिस शिक्षणको पाते हैं वह एक प्रकारका है और उनके भक्त श्रावकोंकी सन्तति जिस शिक्षाको पाती है वह बिल्कुल निराले ढँगकी। एक दूसरेके बिल्कुल विपरीत बहनेवाले शिक्षणके इन दो प्रवाहोंने जैन समाजमें, दो प्रकारके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभूतपूर्व मानसोंको उत्पन्न किया है और वे ही एक दूसरेपर विजय पानेके लिए समाजके अखाड़ेमें उतर पड़े हैं। यदि हम इन परस्परविरोधी दोनों मानसोंका गठन करनेवाले शिक्षण, उसके विषय और उसकी प्रणालीके बारेमें कुछ जान लें, तो निश्चय हो जायगा कि अभी जो मानसिक भूकम्प आया है वह स्वाभाविक और अनिवार्य है। साधु लोग सीखते हैं। सारी जिन्दगी शिक्षा लेनेवाले साधुओंकी कमी नहीं है। उनके शिक्षक उन्हीं जैसे मनोवृत्तिके साधु होते हैं और ज्यादातर तो ऐसे पण्डित होते हैं जो कि बीसवीं सदीमें जन्म लेकर भी बारहवीं या सोलहवीं सदीसे आगे शायद ही बढ़े हों।

साधुओंकी शिक्षाप्रणाली

साधुओंकी शिक्षाका मुख्य विषय जो सबसे पहले उन्हें पढ़ाया जाता है, क्रिया-काण्डविषयक सूत्र हैं। इन सूत्रोंके सीखते और सिखाते समय एक ही दृष्टि सामने होती है कि वे स्वयं भगवान् महावीरके रचे हुए हैं, या पीछेके होनेपर भी ऐसे अचल हैं कि उनमें उत्पाद-व्ययका जैनसिद्धान्त भी गौण हो जाता है। इस क्रिया-काण्डी शिक्षापर सर्वश्रेष्ठताकी छाप इस तरह श्रद्धाके हथोड़े मारमारकर बिठाई जाती है कि सीखनेवाला दूसरे सभी क्रिया-काण्डोंको तुच्छ और भ्रामक मानने लगता है। इतना ही नहीं, वह अपने छोटेसे गच्छके सिवा दूसरे सहोदर और पड़ोसी गच्छोंके विधि-विधानोंको भी अशास्त्रीय गिनने लगता है।

साधुओंके शिक्षणका दूसरा विषय धर्म और तत्त्वज्ञान है। धर्मके नामसे वे जो कुछ सीखते हैं उसमें उनकी एक ही दृष्टि आदिसे अन्त तक ऐसी दृढतासे पोषी जाती है कि उन्हें सिखाया जानेवाला धर्म पूर्ण है। उसमें कुछ भी कम ज्यादा करनेके लिए अवकाश नहीं और धर्मकी श्रेष्ठताके बारेमें उनके मनपर ऐसे संस्कार डाले जाते हैं कि जब तक वे लोग इतर धर्मोंके दोष न देखें और इतर धर्मोंकी कमियाँ न बतलावें, तब तक उन्हें अपने धर्मकी श्रेष्ठताका विश्वास करनेका दूसरा कोई मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता। जैन साहित्यमें दाखिल हुई कोई भी घटना-भले ही वह काल्पनिक हो, रूपक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो, या परापूर्वसे चला आनेवाला कथानक हो, उनके लिए इतिहास और सच्चा इतिहास हैं। उनको पढ़ाया जानेवाला भूगोल विश्वके उस पारसे शुरू होता है जिसमें प्रत्यक्ष देखे जा सकें, और जहाँ स्वयं जाया जा सके, ऐसे स्थानोंकी अपेक्षा ज्यादातर ऐसे ही स्थानोंका बड़ा भाग होता है जहाँ कभी पहुँचा न जा सके और जिसे देखा न जा सके। उनके भूगोलमें देवाङ्गनाएं हैं, इन्द्राणियाँ है और परम धार्मिक नरकपाल भी। जिन नदियों, समुद्रों और पर्वतोंके नाम उनको सीखने होते हैं उनके विषयमें उनका पक्का विश्वास रहता है कि यद्यपि वे वर्तमानमें अगम्य हैं फिर भी हैं वर्णनके अनुसार ही। तत्त्वज्ञान, ऐसे विश्वासके साथ सिखाया जाता है कि जो दोहजार वर्ष पहले संग्रह हुआ था वही अविच्छिन्न स्वरूपमें बिना परिवर्तनके चला आता है। इस लम्बे समयमें आसपासके बलोंने जैन-तत्त्वज्ञानके पोषणके लिए जो दलीलें, जो शास्त्रार्थ जैन साहित्यमें दाखिल किये हैं उनका ऋण स्वीकारना तो दूर रहा, उलटे ऐसे संस्कार भर दिये जाते हैं कि अन्यत्र जो कुछ भी कहा गया है वह सब जैन-साहित्य-समुद्रका बिन्दु मात्र है। नवीं और दसवीं सदी तक बौद्ध विद्वानोंने और करीब करीब उसी सदी तक ब्राह्मण विद्वानोंने जो तात्त्विक चर्चाएँ की हैं वही श्वेताम्बरों या दिगम्बरोंके तत्त्व-साहित्यमें अक्षरशः मौजूद हैं। किन्तु उसके बादकी सदियोंमें ब्राह्मण विद्वानोंने जो तत्त्वज्ञान पैदा किया है और जिसका अभ्यास सनातनी पंडित अब तक करते आये हैं और जैन साधुओंको भी पढ़ाते आये हैं, उस तत्त्वज्ञानके विकाससे — यशोविजयजीके अपवादको छोड़कर—सबके सब जैन आचार्योंका साहित्य वंचित है। फिर भी जैनतत्त्वज्ञानका अभ्यास करनेवाले साधु मानते हैं कि वे जो कुछ सीखते हैं उसमें भारतीय विकसित तत्त्वज्ञानका कोई भी अंश बाकी नहीं रह जाता। भारतीय दार्शनिक संस्कृतिके प्राणभूत पूर्वमीमांसा और उत्तर-मीमांसा दर्शनोंके तनिक भी प्रामाणिक अभ्यासके बिना जैन साधु अपने तत्त्व-ज्ञानको संपूर्ण मानते हैं। भाषा, व्याकरण, काव्य, कोष—ये सब भी उनकी शिक्षाके विषय है, लेकिन उनमें नवयुगका कोई भी तत्त्व दाखिल नहीं हुआ। संक्षेपमें अनेकान्तवादका विषयके नाते तो स्थान होता है परन्तु अनेकान्तकी दृष्टि जीवित नहीं होती। इसी कारण वे विज्ञानका आश्रय तभी लेते हैं जब उन्हें अपने मत-समर्थनके अनुकूल उसमेंसे कुछ मिल जाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चे इतिहासकी वे तभी प्रशंसा करते हैं जब उसमेंसे उनकी मान्यताके अनुकूल कुछ निकल आये। तार्किक स्वतन्त्रताकी बात वे तभी करते हैं जब उस तर्कका उपयोग दूसरे मतोंके खण्डनमें हो सकता हो। इस तरह विज्ञान, इतिहास, तर्क और तुलना, इन चारों दृष्टियोंका उनके शिक्षणमें निष्पक्ष स्थान नहीं है।

आधुनिक शिक्षा

इस देशमें कालेजों और युनिवर्सिटियोंके प्रस्थापित होते ही शिक्षणके विषय, उसकी प्रणाली और शिक्षक, इन सबमें आदिसे अन्त तक परिवर्तन हो गया है। केवल कालेजोंमें ही नहीं प्राथमिक शालाओंसे लेकर हाईस्कूलोंतकमें शिक्षणकी प्रत्यक्ष पद्धति दाखिल हो गई है। किसी भी प्रकारके पक्ष या भेद-भावको छोड़कर सत्यकी नींवपर विज्ञानकी शिक्षा दाखिल हुई है। इतिहास और भूगोलके विषय पूरी सावधानीसे ऐसे ढंगसे पढ़ाये जाते हैं कि कोई भी भूल या भ्रम मालूम होते ही उसका संशोधन हो जाता है। भाषा, काव्य आदि भी विशाल तुलनात्मक दृष्टिसे सिखाये जाते हैं। संक्षेपमें कहा जाय तो नई शिक्षामें प्रत्यक्षसिद्ध वैज्ञानिक कसौटी दाखिल हुई है, निष्पक्ष ऐतिहासिक दृष्टिको स्थान मिला है और उदार तुलनात्मक पद्धतिने संकुचित मर्यादाओंको विशाल किया है। इसके अलावा नई शिक्षा देनेवाले मास्टर या प्रोफेसर केवल विद्यार्थियोंके पंथको पोषनेके लिए या उनके पैतृक परंपरा-मानसको सन्तोष देनेके लिए बद्ध नहीं हैं जैसे कि पशुकी तरह दास बने हुए पंडित लोग।

वातावरण और वाचनालय

केवल इतना ही नहीं, वातावरण और वाचनालयोंमें भी भारी भेद है। साधुओंका उन्नतसे उन्नत वातावरण कहाँ होगा? अहमदाबाद या बम्बई जैसे शहरकी किसी गलीके विशाल उपाश्रयमें जहाँ दस पाँच रटटू साधुओंका उदासीन साहचर्य रहता है। उनको किसी विशेष अध्ययनशील प्रोफेसरके चिन्तन मननका कोई लाभ या सहवासका सौरभ नहीं मिलता। उनके पुस्तकालयोंमें नाना विध किन्तु एक ही प्रकारका साहित्य रहता है। पर नई शिक्षाका प्रदेश बिल्कुल निराला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उसमें विविध विषयोंपर गंभीर और व्यापक अध्ययन करनेवाले प्रोफे-सरोंकी विचारधारा बहती रहती है और विविध विषयोंकी आमूल नये ढंग पर चर्चा करनेवाली पुस्तकोंसे भरी हुई लायब्रेरियाँ रहती हैं।

इसके सिवाय दो बातें ऐसी हैं जो साधु-शिक्षण और नव शिक्षणके बीच बड़ी भारी दीवाल सिद्ध होती हैं। एक तो पंथोंके बाड़ोंमें परवरिश पाया हुआ साधु-मानस स्वभावतः ऐसा डरपोक होता है कि वह भाग्यवश किसी छिद्रसे कोई प्रकाश पा भी ले, परन्तु खुल्लमखुल्ला अपनी परम्पराके विरुद्ध कुछ भी कहनेमें मृत्युके कष्टका अनुभव करता है, जिस तरह पर्देमें रहनेवाली स्त्रीका मानस खुली हवामें पैर रखते ही करता है। लेकिन नई शिक्षाका विद्यार्थी उस भयसे बिल्कुल मुक्त रहता है। वह जो जानता है या मानता है उसे बेधड़क कह सकता है। उसको साधुकी तरह न तो घबड़ाना पड़ता है और न दंभका ही आश्रय लेना पड़ता है।

दूसरे नव शिक्षण पानेवाले युवकों और युवतियोंको केवल इसी देशके विविध स्थलों और विविध जातियोंके बीच ही नहीं विदेशोंके विशाल प्रदे-शोंका स्पर्श करना भी सुलभ हो गया है। सैकड़ों युवक ही नहीं युवतियाँ और कुमारिकाएँ भी यूरोप और अमेरिका जाती हैं। जैसे ही वे जहाजपर चढ़कर अनंताकाश और अपार समुद्रकी ओर ताकते हैं, उनके जन्मसिद्ध बँधन बिल्कुल टूटते नहीं तो ढीले अवश्य हो जाते हैं। विदेश-भ्रमण और परजातियोंके सहवाससे और विदेशी शिक्षण संस्थाओं, अद्भुत प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयोंके परिचयसे उनका मानस हजारों वर्षकी तीव्रतम ग्रंथियोंको भी तोड़नेकी कोशिश करने लगता है और वे सब कुछ नई दृष्टिसे देखने समझने लगते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि जिनको जैन प्रजा अपने गुरुके नाते, अपने नायक और पथ-प्रदर्शककी भाँति मानती आई है उनका मानस किस प्रकारका है और पिछले कुछ वर्षोंसे जो नवीन पीढ़ी नई शिक्षा पा रही है और जिसके लिए उस शिक्षाका ग्रहण करना अनिवार्य है, उसके मानसका गठन किस प्रकार हो रहा है। अगर इन दो प्रकारके गठनोंकी पार्श्वभूमिमें अबूझ और अजोड़ कोई बड़ा भेद है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो अभी जिस भूकम्पका समाजमें अनुभव किया जा रहा है उसको अस्वाभाविक या केवल आगन्तुक कौन बुद्धिमान् कह सकेगा ?

वर्तमान भूकम्प कैसे थमे ?

या तो आजकी और इसके बादकी पीढ़ी नव-शिक्षणके दरवाजोंपर ताले लगाकर उसके संस्कारोंको आमूल मिटा दे और या साधुवर्ग अपनी संकीर्ण दृष्टिमर्यादाको विस्तीर्ण करके नव शिक्षणके द्वारोंमें प्रवेश करने लगे, तभी यह भूकम्प थमनेकी संभावना हो सकती है। नवशिक्षणके द्वारोंमें प्रवेश किये बिना और बारहवीं सदीकी पुरानी प्रणालीका शिक्षण प्राप्त करते रहनेपर भी यदि श्वेताम्बर साधु स्थानकवासी साधुओंकी तरह धर्मके नामसे नवपीढ़ीकी विचारणा या प्रवृत्तिमें अनधिकार बाधा डालना छोड़ दें, तो भी यह भूकम्प थम सकता है। इसके लिए या तो साधुवर्गके लिए पोपों और पादरियोंकी तरह अपने विचार और कार्यकी मर्यादा बदलनेकी अनिवार्य आवश्यकता है या फिर नवीन पीढ़ीको ही हमेशाके लिए मुक्तज्ञानके द्वारोंको बंद कर देना चाहिए।

किन्तु क्या दोनोंमेंसे एक वर्ग भी कभी अपना पल्ला नीचा करनेको तैयार होगा ? नहीं। कोई पामर व्यक्ति भी वर्तमान और उसके बादके मुक्त शिक्षणके अवसरोंको गँवानेके लिए तैयार न होगा। इसके बिना साम्प्रत जीवनका टिकना भी असंभव है। जिस साधुवर्गने आजतक पैतृक तप-संपत्तिके बलसे गृहस्थोंके ऊपर राज्य किया है, और अनधिकार सत्ताके घूँट पिये हैं, वह बुद्धिपूर्वक पुराने जमानेसे आगे बढ़कर नवीन युगके अनुकूल अपने मानसको बना ले, यह तो शायद ही संभव हो। इसी कारण प्रश्न होता है कि नव मानसके पथप्रदर्शक कौन हो सकते हैं ?

नये मानसके पथ-दर्शक

या तो गुरुपदपर रहकर श्रावकोंके मानसका पथ-प्रदर्शन करनेवाला साधुवर्ग नवमानसका भी पथ-प्रदर्शक बने या नवमानस स्वयं ही अपनी लगाम अपने हाथमें ले ले। इसमेंसे पहला तो सर्वथा असम्भव है। हमने देखा है कि आजकलके साधुकी शिक्षण-मर्यादा बिलकुल ही संकुचित है और दृष्टि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्यादा तो उससे भी अधिक संकुचित, जब कि नव मानस बिलकुल ही भिन्न प्रकारका है। ऐसी स्थितिमें वर्तमान साधु-वर्गमेंसे पुरानी शास्त्र-संपत्तिको नई दृष्टिसे देखनेवाले विवेकानन्द, रामकृष्ण जैसे साधु निकलना तो संभव नहीं है। तात्पर्य यह कि कोई भी साधु नवमानसका संचालन कर सके, समीपके भविष्यमें तो क्या लम्बी मुद्दतके बाद भी ऐसी कोई संभावना नहीं है। इसलिए अब दूसरा प्रकार बाकी रहता है। उसके अनुसार नवशिक्षणप्राप्त नई पीढ़ीके मानसको खुद ही अपनी लगाम अपने हाथमें लेनेकी जरूरत है और यह उचित भी है। जब पतित, दलित और कुचली हुई जातियाँ भी अपने आप उठनेका प्रयत्न कर रही हैं तब संस्कारी जैन-प्रजाके मानसके लिए तो यह कार्य तनिक भी कठिन नहीं। अपनी लगाम अपने हाथमें लेनेके पहले नवीन पीढ़ी चंद महत्त्वके सिद्धान्त निश्चिन्त कर डाले। उनके अनुसार कार्यक्रम गढ़े और भावी स्वराज्यकी योग्यता प्राप्त करनेकी तैयारीके लिए सामाजिक उत्तरदायित्व हाथमें लेकर सामूहिक प्रश्नोंको व्यक्तिगत लाभकी दृष्टिसे देखकर स्व-शासन और स्व-नियंत्रणके बलका संग्रह करे।

पर्युषण-व्याख्यानमाला
बम्बई, १९३६

अनुवादक
निहालचंद्र पारेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org